National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(64): 213-217
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ नीलकंठ कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी भाषा-शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी, नई दिल्ली

Correspondence:
डॉ नीलकंठ कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी भाषा-शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी, नई दिल्ली

हिंदी कहानी और जीवन की वास्तविकता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ नीलकंठ कुमार

सारांश-

प्रस्तुत शोध लेख में कहानी के गूढ़ पहलूओं का गहन विवेचन किया गया है। गुणात्मक शोध प्रक्रिया में विभन्न साहित्यिक पुस्तकों यथा 'राम की शक्ति पूजा', 'कामायनी' , 'अँधेरे में' 'पूस की रात', 'उसने कहा था' एवं 'लालपान की बेगम', इंदुमती, ग्यारह वर्ष का समय, पंडित और पंडितानी तथा बंग महिला की दुलाईवाली कहानियों के दृष्टांत का विशिष्ट विश्लेषण किया गया है। इस का उद्देश्य छात्रों में साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना, भाषा एवं साहित्य के संबंध को समझना और भाषिक तत्व तथा साहित्यिक पक्षों से छात्रों को अवगत कराना है। इस पत्र में छात्रों को कल्पना, अनुमान और सृजनात्मक भाव को उजागर करने और कहानी के मुख्य भाव को उन तक सरल ढंग से पहुचाने का प्रयास किया गया है।प्रेमचंद के पश्चात् कहानी का एक नया दौर प्रारंभ होता है। बदली हुई सामाजिक एवं जीवन पद्धति ने कहानी को भी बदल दिया। फ्रांस की राज्यक्रांति ने विश्व स्तर पर समानता एवं बंधुत्व की पुकार ने मनुष्य एवं मनुष्य के बीच की दूरियों को कम कर दिया। धर्म एवं राजसत्ता का प्रभाव जैसे-जैसे जन जीवन से घटता गया वैसे-वैसे साहित्य में भी उन्मुक्तता आती गई। लेखक (एक हद तक) दैवी विधान से मुक्त हुआ। पहले लेखक को इतनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं थी जिसे साहित्यिक भाषा में 'स्पेस' कहते हैं। अतः व्यक्तिगत सत्ता को महत्ता दी गई एवं व्यक्ति प्रधान चरित्र और कथानक वाली कहानियाँ लिखी जाने लगीं। अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी तथा नए कहानीकारों ने इस 'स्पेस का खुलकर इस्तेमाल किया। मानवीय जीवन की प्रजातांत्रिक जीवन पद्धति ने कहानी को भी प्रजातांत्रिक बना दिया। हालाँकि इस स्पेस का हिंदी कहानी पर कुप्रभाव पड़ा। इसलिए कुछ आलोचक इसे कहानी का 'रीतिकाल' भी कहते हैं। प्रेमचंद के उपरांत सामाजिक एवं जीवन से जुड़ाव की जो धारा फूटी थी सहसा कुछ लेखकों के लिए यह आंतरिक यात्रा का पाथेय बन गई। एकाएक वे औरतें जो प्रेमचंद तक जिंदगी को वहन करने वाली केंद्रीय इकाइयाँ थीं, प्रेम विदग्ध प्रेयसियों में बदलने लगती हैं, पुरुष श्रीकांत की तरह नपुंसक होने लगते हैं और बिना जड़ों के। लेखक की अपनी दमित वासनाओं और कुंठाओं से ग्रस्त उपजीवी पात्र अवतरित होने लगते हैं। दीदी, भाभी या बहन जी के रिश्ते वाले व्यक्तियों में कामुकता कसमसाने लगती है। वस्तुतः साहित्य की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं, बल्कि यही सीमा साहित्य की विशेषता भी होती है जो साहित्य को साहित्य बनाए रखती है। हिंदी कहानियाँ जीवन की वास्तविकता को अभिव्यक्त करती है, किन्तु उसका इतिहास नहीं लिखती। शायद इसीलिए साहित्य में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि इतिहास से कुछ भी नहीं छूटता, साहित्य से बहुत कुछ छूट जाता है।

बीज शब्द- कहानी, कामायनी, प्रजातांत्रिक, साहित्यिक भाषा, सृजनात्मक भाव, कल्पना, अनुमान, भाषिक तत्व

हिंदी कहानी और जीवन की वास्तविकता: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

एक डॉक्टर को जर्मन चित्रकार अल्ब्रेख्त दूरा के रोग के बारे में पता नहीं चला तब उस चित्रकार ने उसके पास अपना नग्न चित्र (न्यूड) भेजा जिसमें एक अंग विशेष पर उँगली से संकेत किया गया था और

लिखा था— "यहाँ दुखता है"।[1] कहानी का काम भी मूलतः यही है। वह जीवन की वास्तविकता का इतिहास नहीं लिखती बल्कि उसकी ओर संकेत मात्र करती है। जीवन का क्षेत्र इतना व्यापक और विस्तृत है कि किसी भी विधा के लिए यह संभव नहीं कि वह सारी वास्तविकताओं को अपने अंदर समेट ले। जीवन के इन विभिन्न भागों को हर विधा अपने अनुसार समेटने का प्रयास करती है। इन विधाओं का अपना महत्व भी है। अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी जीवन की वास्तविकताओं के अधिक निकट है। ऐसा शायद इसलिए है कि कहानी कहने की 'शैली' एवं इसकी भाषा हमारे दैनंदिन के जीवन से ही उद्‌भूत है। कविता की भाषा कहानी की तरह आम बोलचाल की भाषा नहीं होती। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और भाषा मनुष्य की सामाजिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। भाषा व्यक्ति को व्यक्ति एवं समाज के निकट पहुँचाती है। कहानीकार आम बोलचाल की भाषा में अपनी संवेदनाओं को घोलकर कहानी की भाषा का निर्माण करता है। शायद इसीलिए कविता को हमें समझने की ज़रूरत होती है किंतु कहानी को समझने की ज़रूरत नहीं होती। 'राम की शक्ति पूजा', 'कामायनी' या 'अँधेरे में' को हर व्यक्ति सुनकर नहीं समझ सकता। किंतु 'पूस की रात', 'उसने कहा था' एवं 'लालपान की बेगम' को मजदूर व किसान से लेकर साहब, मुख़्तार तक समझ सकते हैं।

हिंदी की प्रारंभिक दौर की कहानियों में जिंदगी का बहुत छोटा-सा हिस्सा हमारे हाथ लगता है। बहुत सारे पहलू छूट भी गए हैं। फिर भी इस दौर की कहानियों ने ज़िंदगी की वास्तविकता का दामन नहीं छोड़ा है। इंदुमती, ग्यारह वर्ष का समय, पंडित और पंडितानी तथा बंग महिला की दुलाईवाली सरीखी कहानियों में साधारण जीवन की साधारण घटनाओं को तथा क्षेत्रीय रंग को पर्याप्त महत्व मिला था जिनसे हिंदी कहानी की दिशा एवं संकेत के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। दूसरे दौर की कहानियों का ज़िक्र करने से पहले यह समझ लेना चाहिए कि इस दौर की कहानियों की मूल प्रेरक शक्ति राष्ट्रीय भावना थी। देश आज़ादी के लिए उद्विग्न था किंतु सशक्त क्रांति की पूरी तैयारी और उसके अनुकूल परिस्थिति न होने के कारण देश समाज-सुधार की ओर, वर्तमान के उन्नयन की ओर और अतीत के गौरव से प्रेरणा प्राप्त करने की ओर मुड़ गया था। संक्षेपतः राष्ट्रोत्थान की उद्दाम आकांक्षा ने देश के चित्र में गाँव, समाज की सुधार भावना तथा आँख खोलकर वर्तमान को देखने की प्रवृत्ति को जागृत कर दिया। प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' हो या 'ईदगाह', 'कफ़न' हो या 'पूस की रात' अथवा प्रसाद की 'बिसाती', 'देवरथ', 'आकाशदीप' हो या 'पुरस्कार' – इस दशक की प्रायः प्रत्येक कहानी में राष्टोत्थान की दृढ़ भावना और समाज सुधार की अदम्य आकांक्षा के स्वर सुनाई पड़ते हैं। यहाँ तक कि गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' में भी त्याग और बलिदान की भारतीय परंपरा ही दिखाई पड़ती है। प्रेमचंद की कहानियों में आर्यसमाजी एवं गाँधीवादी प्रभाव सर चढ़कर बोलता है। शायद इसी को रेखांकित करते हुए **रांगेय राघव लिखते हैं, "आज बिलकुल भी आवश्यक नहीं है कि न्याय पंच के सिर चढ़कर ही बोले, पंच अक्सर न्याय के प्रति उतने समर्थित नहीं हैं जैसा प्रेमचंद समझते हैं।"** इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि प्रेमचंद ने जीवन के उसी भाग को छूआ जिसको उन्होंने जिया था। ऐसा कहने का ये कतई मतलब नहीं है कि प्रेमचंद की कहानियों में जीवन की वास्तविकता से पलायन है

बल्कि यह कि उनकी पकड़ से कुछ छूट भी गया है जिसे पकड़ा जा सकता था। इसी स्थिति को स्पष्ट करते हुए राजेंद्र यादव 'कहानी: स्वरूप और संवेदना' लिखते हैं— "नए-नए सामाजिक परिवर्तनों, शहरी जीवन की परिस्थितियाँ, राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों के कारण परिस्थितियाँ बदल गई हैं, लेकिन उनका मनुष्य अभी भी घर, खेत, परिवार, गाँव के साथ सामंतयुगीन मूल्यों से जुड़ा है, पुरानी नैतिक मान्यताओं में जीता है।" एक अन्य जगह वे यह बात भी कह देते हैं कि प्रेमचंदयुगीन कहानियों का स्वर यदि दया-ममता, करुणा-प्यार, सच्चरित्रताशील, ईमानदारी, न्याय, सद्भावना इत्यादि सद्‌वृत्तियों की भावुक स्थापना का है तो जैनेंद्र, यशपाल, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी का इन स्थापित मूल्यों पर हर तरफ से शंका और प्रश्न का।[2]

प्रेमचंद के पश्चात् कहानी का एक नया दौर प्रारंभ होता है। बदली हुई सामाजिक एवं जीवन पद्धति ने कहानी को भी बदल दिया। फ्रांस की राज्यक्रांति ने विश्व स्तर पर समानता एवं बंधुत्व की पुकार ने मनुष्य एवं मनुष्य के बीच की दूरियों को कम कर दिया। धर्म एवं राजसत्ता का प्रभाव जैसे-जैसे जन जीवन से घटता गया वैसे-वैसे साहित्य में भी उन्मुक्तता आती गई। लेखक (एक हद तक) दैवी विधान से मुक्त हुआ। पहले लेखक को इतनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं थी जिसे साहित्यिक भाषा में 'स्पेस' कहते हैं। अतः व्यक्तिगत सत्ता को महत्ता दी गई एवं व्यक्ति प्रधान चरित्र और कथानक वाली कहानियाँ लिखी जाने लगीं। अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी तथा नए कहानीकारों ने इस 'स्पेस का खुलकर इस्तेमाल किया। मानवीय जीवन की प्रजातांत्रिक जीवन पद्धति ने कहानी को भी प्रजातांत्रिक बना दिया। हालाँकि इस स्पेस का हिंदी कहानी पर कुप्रभाव पड़ा। इसलिए कुछ आलोचक इसे कहानी का 'रीतिकाल' भी कहते हैं। प्रेमचंद के उपरांत सामाजिक एवं जीवन से जुड़ाव की जो धारा फूटी थी सहसा कुछ लेखकों के लिए यह आंतरिक यात्रा का पाथेय बन गई। एकाएक वे औरतें जो प्रेमचंद तक जिंदगी को वहन करने वाली केंद्रीय इकाइयाँ थीं, प्रेम विदग्ध प्रेयसियों में बदलने लगती हैं, पुरुष श्रीकांत की तरह नपुंसक होने लगते हैं और बिना जड़ों के। लेखक की अपनी दमित वासनाओं और कुंठाओं से ग्रस्त उपजीवी पात्र अवतरित होने लगते हैं। दीदी, भाभी या बहन जी के रिश्ते वाले व्यक्तियों में कामुकता कसमसाने लगती है।[3] इन्हीं परिस्थितियों से क्षुब्ध कमलेश्वर इस दौर की कहानियों के बारे में लिखते हैं— "शायद हिंदी कहानी के इतिहास में प्रेमी-प्रेमिकाओं के आँसूओं के इतने महानद, आहों के इतने महामेघ और सिसकियों के इतने महास्वर कभी नहीं गूँजें, क्योंकि तमाम भाभियाँ और तमाम दीदियाँ सिर्फ अपने प्रेमियों

के लिए जी रही थीं, यहाँ तक कि एक-एक प्रेम-सने वाक्य के अलग-अलग लोकेल्स चुने गए।"[4]

ऐसा भी नहीं है कि जिंदगी में यकायक इतना परिवर्तन आ गया कि इस युग के कहानीकारों को ऐसी कहानी लिखने की जरूरत महसूस होने लगी। अभी भी व्यक्ति निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग 42 की क्रांति में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा था। किसान और जमींदारों के पारस्परिक संबंध टूट रहे थे। मजदूर और मालिक के रिश्ते नए संतुलन की माँग कर रहे थे। टूटता परिवार अपने भावात्मक स्रोतों को खोज रहा था और महायुद्ध की विकराल छाया के अंतर्गत भीषण अवसाद, अनिश्चय और विपन्नता भरी हुई थी। साथ ही प्रखर होते स्वाधीनता संग्राम का प्रचंड रोष, शक्ति और क्रियाशीलता भी नजर आ रही थी।[5] दरअसल बंधन से एकाएक मुक्ति मिलने के कारण इनकी नजरें धुँधली पड़ गई थीं। प्रकाश की अधिकता में जैसे हमारी आँखें 'चौंधिया' जाती हैं, कुछ वैसा ही इस युग के कहानीकारों के साथ भी हुआ। ऐसा नहीं है कि हिंदी कहानी के इस 'रीतिकाल' में कुछ पृथक स्वर नहीं थे पर वे कुछ ही थे, अधिकांश नहीं। 'अश्क' का निम्न मध्यवर्ग और भगवती चरण वर्मा की कुछ कहानियों में उभरा परवेश (मुगलों ने सल्तनत बख्श दी, दो बाँके आदि) और यशपाल के विचारों के आग्रही पात्र इसी समय सामने आए।[6]

इसके तुरंत बाद हिंदी कहानी में नई कहानी का दौर आता है जो अपने पूर्व की कहानियों की अपेक्षा जिंदगी की सच्चाईयों से ज्यादा निकट है। इसमें संदेह नहीं कि पूर्ववर्ती कहानीकारों की रचनाएँ धीरे-धीरे युग और समाज के अंतर्विरोध के कारण धूमिल पड़ने लगी थीं क्योंकि उस पीढ़ी ने वास्तविकता से जूझने की अपेक्षा आँख बचाने की क्षुद्र चेष्टाएँ की थीं। दिनकर जी ने एक लेख (आधुनिकता और भारत धर्म) में इस अंतर्विरोध का विशद विवेचन किया है और उन्होंने यह सही कहा है कि मनु, शंकराचार्य और तुलसीदास आदि के वर्णाश्रम धर्म को समाज की आधारभूमि न मानकर भारत ने बुद्ध, कबीर और राजाराम मोहन राय आदि के जीवन-दर्शन और विचार स्रोत से अपने मानस का निर्माण किया है और देश का संविधान इसी बदली हुई मनःस्थिति को ही रेखांकित और उद्घोषित करता है। समाज संरचना के धरातल पर यह बात जितनी सही है, उतनी ही यह साहित्य के संबंध में भी प्रासंगिक है।[7] लेकिन संविधान ने जिस समाज रचना का रूप हमारे सामने रखा था, आजादी के जश्न में वह कहीं गुम होता दिखाई देता है क्योंकि वे नेता जो देश का भविष्य निर्माण करने के लिए उपस्थित थे, भ्रष्ट हो गए थे। मेला उठने के तत्काल बाद ही जैसे झंडियाँ, सुतलियाँ, बल्लियाँ, तोरण और अल्पनाएँ बिखर और फैल-छितरा जाती हैं, वैसे ही आजादी का यह मेला उठते देर नहीं लगी और चारों तरफ बिखराव, अव्यवस्था और छितराव नजर आने लगा। धर्मगुरुओं की तरह बड़े नेता अपने शीश महलों में जा घुसे और आवारा छोकरों की तरह स्थानीय और क्षेत्रीय नेताओं ने ध्वंस शुरू किया।[8] यह एक चकित में देने वाला तथ्य है कि आजादी से पहले के सत्याग्रही नेता एकाएक भ्रष्टाचार, अनाचार और अत्याचार के पक्षधर और भागी कैसे बन गए। चकित कर देने वाला यह क्षोभ, कुंठा एवं संत्रास आजादी के बाद की कहानियों में खुलकर अभिव्यक्त हुआ है।

रवींद्र कालिया एवं गंगाप्रसाद विमल जैसे कहानीकारों ने तो राजनेता, व्यापारियों एवं भ्रष्टाचार की इस तिकड़ी को खोलकर नंगा कर दिया है। इतिहास कर्म की यर्थाथ परिस्थितियों से निकलकर आया हुआ मनुष्य एक बार फिर कहानी का केंद्र बनता है और उपजीवी रीतिकालीन पात्रों का दौर खत्म होता है। भारतीयता की तलाश शुरू होती है और इसीलिए अपने अनुभूत प्रामाणिक यर्थाथ की ओर दृष्टि जाती है। प्रामाणिकता के आग्रह से ही जिसकी भूमिखंड और समाज से लेखक का परिचय था उसने उसे ही अपनी कथा का घटनास्थल बनाया— नागार्जुन और रेणु ने बिहार की 'परती' एवं 'मैला आंचल' में ढूमरी गाई तो शानी और राजेन्द्र अवस्थी ने बस्तर के आदिवासियों की जिंदगी को केंद्र बनाया। शैलेश मटियानी, शिवानी और पानू खोलिया ने कुमाऊं के पहाड़ी मोड़ों में जीवन की धूप-छांह देखी तो मार्कण्डेय, शिवप्रसादसिंह और अवधनारायण सिंह ने उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल की प्रेमचंदीय जमीन पकड़ी। रमेश बक्षी के पास मालवा की सांस्कृतिक सुरुचि थी तो कृष्णा सोबती, बलवंत सिंह, अमृता प्रीतम ने पंजाबी किसानों और मध्यमवर्गीय परिवारों की हलचल भरी जिंदगी की उठाया। पहले के कहानीकार आसानी से अपनी कहानियों के घटनास्थल, इतिहास या किसी भी परिचित अपरिचित देश-प्रदेश की जिस देशकाल को हमने अपने अनुभव का हिस्सा नहीं बनाया है, वह हमारा कथा क्षेत्र नहीं हो सकता। इस सीमित अनुभव क्षेत्र ने नए कहानीकारों को मानवीय संबंधों और उसकी विडंबनाओं की ओर देखने को बाध्य किया।

नई कहानी में एक ओर वे पात्र हैं जो अपने प्रगाढ़ भारतीय संस्कार लिए जीवन के दृश्य पर से विलीन हो रहे हैं— यानी पिता, बुजुर्ग और उम्र के साथ मिटते हुए लोग, 'आद्रा' की माँ, 'गुलरा के बाबा' के बाबा, 'चीफ की दावत' की माताजी, 'बिरादरी के बाहर' के बाप, 'वापसी' के पिता या 'पिता' के पिता और 'रक्तपात' की माँ।[9] दूसरी तरफ ऐसे भी पात्र हैं तो अपनी संपूर्ण आधुनिकता एवं जिंदगी में आए परिवर्तन के साथ अभिव्यक्त हो रहे हैं। आज दलितों, मजदूरों, किसानों एवं स्त्रियों की प्रेमचंदीय स्थितियाँ नहीं रह गई हैं। समकालीन कहानी तो इस मायने में एक और कदम आगे बढ़ गई है। नक्सलबाड़ी आंदोलन से कदम से कदम मिलाकर चलने वाली इन कहानियों ने समाज में दबे-कुचले एवं हाशिए पर रहने वाले लोगों को सामने लाने की बेबाक कोशिश की है। वेश्या, पागल, भिखारी,

आदिवासी जैसे समाज की कथा-व्यथा से एक नए रूप में हमारा तार्रुफ़ हुआ। कहानी का यह बदला हुआ तेवर शायद और स्पष्ट हो जाए अगर इन कहानियों को हम प्रेमचंदयुगीन कहानियों के बरक्स रखकर देखें। प्रेमचंद की कहानी का एक दलित पात्र बोलता है- "पराई माता मुझसे भूल हुई कि आपके घर चला आया। चमार को अकल ही कितनी होती है। इतने मूरख न होते तो लात क्यों खाते।"[10] पर अब पात्रों के ये संवाद बदल गए हैं और इनके उदाहरण दिखाई देने लगे हैं।

न जाने कितने स्वरूपों पर कहानियाँ लिखी गईं। अभी तक पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार कहानियों में स्त्री का स्वरूप गढ़ रहे थे, किन्तु जैसे ही स्त्रियाँ खुद अपनी कहानी लिखने लगीं स्थिति बिल्कुल बदल गई। आधुनिक स्त्री अब अपनी पूरी गरिमा और देह संपदा को कहानियों में ले आई हैं। अब संबंधों के ध्रुव दो हैं- स्त्री और पुरूष। दोनों सारी संगतियों और विसंगतियों के साथ अपनी प्राकृतिक अपेक्षाओं से सीधे-सीधे संबद्ध हैं। संबंधों में आए इस बदलाव ने कहानियों में प्रेम को अधिक मांसल एवं ऐंद्रिक बना दिया है। प्रसाद की कहानियों का प्रेम, लहना सिंह का प्रेम, परिंदे का प्रेम, कोशी के घटवार का प्रेम तथा जया जादवानी के कॉकरोच का प्रेम, एक ही नहीं है। प्रेम में अब यौन संबंधों के साथ एकाकीपन का भी अहसास है। किन्तु इन सारे परिवर्तनों के बावजूद आज भी नैतिकता मरजाद एवं लोकलाज का बोझ हिंदी कहानियों पर हावी है, इससे हम इनकार नहीं कर सकते। इस बोझ ने आज भी हिंदी कहानी को ज़िंदगी की उस वास्तविकता से दूर रखा है जिसे अज्ञेय ने तारसप्तक (1943) के वक्तव्य के माध्यम से प्रकट भी किया है— "आधुनिक युग का हरेक मानव यौन वर्जनाओं का पुंज है।"

हिंदी कहानी ने मानवीय जीवन के किन भागों को छुआ है, साथ ही यह भी न भूलें कि उसने क्या छोड़ दिया है। प्रेमचंद के बाद मुस्लिम समाज की ज़िंदगी को अभिव्यक्त करने वाली कहानियाँ नहीं के बराबर लिखी गई हैं। क्या 'ईदगाह' सरीखी कहानियाँ लुप्त होती हुई प्रजाति नहीं बनती जा रहीं? यदि जीवन की वास्तविकता का मतलब एक खास क्षेत्र एवं संप्रदाय के लोगों की ही जिंदगी है तो हिंदी कहानी जीवन की वास्तविकता की अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन दुर्भाग्यसे ऐसा है नहीं। हिंदी प्रदेश के चारों ओर देखें तो बंगला एक जाति है, उड़िया एक जाति है, असमिया एक जाति है, गुजराती-पंजाबी-मराठी एक जाति है, यहाँ तक कि कुमाऊँ-गढ़वाली-नेपाली भी एक जाति है। क्या हिंदी कहानी इन जातियों के जीवन को अभिव्यक्त कर पाई है? थोड़े बहुत फेर-बदल के साथ उत्तर होगा, नहीं। हिंदी कहानी में ग्राम्य जीवन पर सबसे अधिक लिखा गया है, मगर उसमें भी लोकजीवन या लोकवार्ता अनुपस्थित है। ग्राम्य या किसान जीवन पर आधारित इतने सुविशाल कथा-साहित्य में स्थानिक पेड़-पौधे, ग्राम देवता या देवस्थान, जनपदीय रीति-रिवाज, वेशभूषा, नृत्य-संगीत, स्थानिक मेले-ठेले का अंश इतना नगण्य है कि कहना ही पड़ता है कि हिंदी कहानी में लोकवार्ता अनुपस्थित है, जबकि हमारी कहानियों का मुख्य उपजीव्य ग्राम-जीवन है। इसके अलावे हमारे यहाँ हास्य कथाएँ अनुपस्थित हैं, पर्यावरण के गहन संकट का विवरण अनुपस्थित है, नदी-तट या समुद्र तट की विशिष्ट जीवन गाथा अनुपस्थित है, विभिन्न व्यवसायगत जीवन स्थिति पर आधारित प्रामाणिक कथाएँ अनुपस्थित हैं, जैसे विलुप्तप्राय पुरोहित प्रवर्ग, स्टेशन पर के हॉकर, बच्चे, हज्जाम, कुम्हार, मोची, मछुआरे, अपहरणकर्ता, वेश्याओं के दलाल, माचिस या पटाखे बनाते शिशु श्रमिक, बाल वेश्याएँ, मुर्गों की ड्रेसिंग करते बच्चे आदि-आदि।

कहना न होगा कि किसी कहानी में एक चरित्र के रूप में तो ये बार-बार चित्रित हुए हैं, मगर इनकी व्यवसायगत जीवन पद्धति को विस्तार से और अलग से, कदाचित ही लिखा गया है। सिलसिला यहीं खत्म नहीं होता, समकालीन हिंदी कहानी में बाल साहित्य लगभग अनुपस्थित है। समकालीन हिंदी कथा-साहित्य का एक प्रतिशत भी बच्चों के लिए नहीं है। इसके समानांतर उदाहरण के लिए बंगला कथा साहित्य को देखें – रवींद्र, शरत से लेकर विभूतिविभूषण, ताराशंकर, नजरूल होते हुए बुद्धदेव गुहा तक यहां तक कि आजकल के प्रतिष्ठित कथाकारों तक इसके सृजन का बीस-तीस प्रतिशत बच्चों के लिए रचा गया है। बंगला का वैसा कोई कथाकार प्रतिष्ठा न पा सका, जिसने बाल साहित्य की रचना नहीं की है। यह शायद चौंकाने वाला तथ्य लगे कि रवींद्र के सुविशाल सृजन-कर्म का पैंतीस प्रतिशत बाल साहित्य ही है। आज ऐसा कौन-सा बंगाली पाठक होगा जिसने 'चांदेर पहाड़' नहीं पढ़ा होगा और जो उनके लिए आज भी 'एलिस इन द वंडरलैंड' की तरह अवश्य पाठ्य नहीं है? थोड़ा और विस्तार में जाएँ तो हमारे यहां श्रेष्ठ जासूसी कहानियाँ नहीं हैं, अभियान कथाएँ अनुपस्थित हैं, देशाटन की कथाएँ बेहद कम हैं, श्रेष्ठ साइन्स एवं क्राइम फिक्शन अनुपस्थित हैं, जबकि विश्व स्तर पर हम देखें तो क्राइम फिक्शन से संबंधित ढेरों कहानियाँ हमें मिलेंगी।

जीवन का दायरा इतना विस्तृत है कि कहानी ही का क्या किसी साहित्यिक विधा के वश की बात यह नहीं है कि इन सारी वास्तविकताओं को अपने अंदर समेट ले। इस परेशानी का अहसास दिलाती है कमलेश्वर की ये कचोट जो उनकी पुस्तक 'नयी कहानी की भूमिका' में अभिव्यक्त हुई है, "कहानी और उपन्यास लिखे जाने के बाद भी कितना कुछ कहने को बाकी रह जाता है। उसी की पूर्ति का यह एक प्रयास है।"[11] वस्तुतः साहित्य की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं, बल्कि यही सीमा साहित्य की विशेषता भी होती है जो साहित्य को साहित्य बनाए रखती है। हिंदी कहानियाँ जीवन की वास्तविकता को अभिव्यक्त करती है, किन्तु उसका इतिहास नहीं लिखती। शायद इसीलिए साहित्य में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि इतिहास से कुछ भी नहीं छूटता, साहित्य से बहुत कुछ छूट जाता है।

सन्दर्भग्रन्थ:

[1] https://jimbarrett.medium.com/an-early-avatar-the-sick-durer-6b7f1ea75c9a
Albrecht Dürer (1471–1528), the illustrious German printmaker, painter, and designer, produced an intriguing pen and watercolour, half-length self-portrait. The Sick Dürer is small, 12 cm×11 cm, and on it Dürer wrote, "There, where the yellow spot is located, and where I point my finger, there it hurts."

[2] यादव, राजेंद्र. कहानी: स्वरुप और संवेदना, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, पृ. 38

[3] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृ. 12

[4] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृ. 12

[5] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृ. 13

[6] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृ. 13

[7] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृ. 1

[8] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृ. 15

[9] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृ. 18

[10] प्रेमचंद.सद्गति https://www.hindwi.org/story/sadgati-prem-chand-story

[11] कमलेश्वर. (1969). नयी कहानी की भूमिका. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. शुरू की बात पृष्ठ से